ासिक
ूल्य ३)

6/62

6/62

मनुष्य बनो

BE MAN

ਮਨੁੱਖ ਬਣੋ

نسان بنو

संरक्षक
व
संस्थापक

परमसंत दयाल फकीरचंदजी म

दातादयाल महर्षि शिवजी महाराज

साहब जी महाराज

भाई जी महाराज

* विषय सूची *

क्रमांक	विषय	लेखक	पृष्ठ
१	हमारी बात, गुरु की दात	(सम्पादक)	२
२	प्रार्थना	(दाता दयाल)	३
३	मूर्ख मनसुखा की कहानी	,,	४
४	दाता दयाल जी का अमूल्य उपदेश		५
६	जीवन का अन्त–कर्म भोग अथवा मौज	(परम दयाल)	६
		(दाता दयाल)	१०
७	चेतावनी	,,	१०
८	पद निर्वाण	,,	११
९	मन के दोष और योग		१४
१०	पत्रोत्तर परम दयाल जी का ठाकुर गिरधरसिंह जी को		१६
११	भाव की महिमा और महत्व		१७
१२	कर्म भोग अथवा मौज	(परम दयाल जी)	२०
१३	परम दयाल जी का पत्र बिश्वप्रेमी के नाम		25
15	A letter from His Holiness to Revd. Krishak Ji		२६
१५	ग़ज़ल पीरेमुग़ाँ साहब		२६
१६	मेरे घमण्ड का सिर नीचा— कर्म भोग अथवा मौज	(परम दयाल जी)	२८
१७	दयाल नन्दूभाई जी महाराज का उपदेश		२९
१८	कर्म भोग अथवा मौज	(परम दयाल जी)	३३
१९	अपने आप में अपना दर्शन		३३
२०	कर्म भोग अथवा मौज	(परम दयाल जी)	३६
२१	कर्म भोग अथवा मौज	,,	४०
२२	सवाल	(दाता दयाल)	

प्रकाशक—मुन्शीलाल गोविल, दयाल दम्पाउण्ड। अलीगढ़।

मुद्रक—प्यारेलाल भा, चित्रा प्रिंटिंग प्रेस, अलीगढ़।

* हमारी बात ।। गुरु की दात *

ख़ुशी आई, ख़ुशी आई, ख़ुशी आई, ख़ुशी आई।
ख़ुशी का है मुझे सौदा, ख़ुशी का मैं हूं शैदाई ।।
ख़ुशी दौड़ी चली आती है, जब मैं याद करता हूँ ।
उसी का नाम ले ले कर, दिल अपना शाद करता हूँ ।।
ख़ुशी की ज़िन्दगानी है, ख़ुशी का है सफ़र अपना ।
यही हिस्से में आई है, दिखाती है असर अपना ।।
इसी के वास्ते दुनियाँ में, जिनको देखो फिरते हैं ।
नहीं जो राज़ से वाक़िफ़, वही बेचारे गिरते हैं ।।
हुआ जब करम मुर्शिद का, हमें यह बात समझाई ।
ख़ुशी है बन्दगी उनकी, इसी से मेरी बन आई ।।
ख़ुश रहो और हो ख़ुशी की ज़िंदगी। ख़ुशदिली ही है ख़ुदा की बंदगी ।।
जो हमको काम बख़्शा है, ख़ुशी से उसको करते हैं ।
हमारा इसमें क्या है, हम दम उनका ही भरते हैं ।।
इक नज़र मुझको दिखाई, मैं हुआ साहब नज़र ।
तेरी ही तासीर से, आया है यह मुझ में असर ।।

सतगुरु ने मेरी बाँह गही, मैं चिन्तित होना क्या जानूं ।
गुरुदेव ने मुझ को ज्ञान दिया, अज्ञान भरम को क्यों मानूं ।।
अज्ञान, भरम ही कारण था, दुख का, फ़िक्र और चिन्ता का ।
गुरु के सतसंग से समझ मिली, अब इनसे डरना क्या जानूं ।।
ऋद्धि, सिद्धि, शक्ति के, प्रलोभन से भी दूर किया ।
ये उनकी विलक्षण लीला हैं, सबसे बढ़ कर उनको मानूं ।।
यह समस्त खेल संसार के जो, सब उन्हीं के सहारे होते हैं ।
वह परम पुरुष अविनाशी हैं, सब में ही उनको जानूं ।।
हैं राधास्वामी परम दयाल, और परम तत्व परमानन्दा ।
मैं सुमिरन ध्यान भजन करके, आपे में गुम होना ठानूं ।।
सतगुरु सब का कल्याण और सुमति प्रदान करें ।

नोट—मौहर्रम की वजह से पत्रिका दो दिन लेट निकल रही है ।

मनुष्य बनो

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णत्पूर्ण मुदच्यते ।।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।

वर्ष १० | जून १९६२] ज्येष्ठ,आषाढ़ मासे-वि० २०१९ | [सं०९।११७

तेरी दया का दृढ़ विश्वास हुआ, चरणों में पड़ा निज दास हुआ ।
करूँ बीनती दोऊ कर जोरी, अरज सुनो राधास्वामी मोरी ।।
संसार से, सहज उदास हुआ ।।
सत्त पुरुष तुम सतगुरु दाता, सब जीवन के पितु और माता ।
ढाढ़स बाँधी, घट में उजास हुआ ।।
दया धार अपना कर लीजे, काल जाल से न्यारा कीजे ।
तब समझूंगा, माया का नाश हुआ ।।
सतयुग, त्रेता, द्वापर बीता, काहू न जानी शब्द की रीता ।
सब में अज्ञान का बास हुआ ।।
कलियुग में स्वामी दया विचारी, परगट करके शब्द पुकारी ।
विद्या सत ज्ञान का भास हुआ ।।
जीव काज स्वामी जग में आये, भव सागर से पार लगाये ।
तब दुखी जीव, सुख रास हुआ ।।
तीन छोड़ चौथा पद दीन्हा, सत्त नाम सतगुरु गति चीन्हा ।
अनुभव का, आप विकास हुआ ।।
जगमग जोत होत उजियारा, गगन सोत पर चन्द्र निहारा ।
घट ब्रह्म रेन्द्र, कैलाश हुआ ।।
सेत सिंहासन छत्र विराजे, अनहद शब्द ग़ैब धुन गाजे ।
हिया उमगा, हर्ष हुलास हुआ ।।
क्षर अक्षर निः अक्षर पारा, विनती करे जहां दास तुम्हारा ।
पृथ्वी छुटी, गुज़र आकाश हुआ ।।
लोक अलोक पाऊँ सुख धामा, चरण शरण दीजे विश्रामा ।
राधास्वामी, चरण निवास हुआ ।।

मूर्ख मनसुखा की कहानी (दाता दयाल)

एक सम्राट के दरबार में एक मूर्ख मनसुखा रहता था। एक दिन राजा ने उसको एक छड़ी दी कि जब कोई व्यक्ति तुझ से अधिक मूर्ख अथवा निपट गँवार मिले तो उसको देदेना। मनसुखा ने वह लकड़ी हाथ में लेली। कुछ दिवस पश्चात् राजा बहुत बीमार हुआ। जीने की आशा नहीं रही। मंत्री इत्यादि सब देखने के लिये आये। सबके पश्चात् यह मनसुखा भी आया। उसने पूछा "महाराज जी का स्वास्थ्य कैसा है ?" उत्तर दिया गया अन्त समय की यात्रा की तैयारी हो रही है।

मनसुखा—"कितनी दूर की यात्रा है ?"

राजा—"शोक और खेद है ! इतनी लम्बी यात्रा है कि उस ओर से कोई लौट कर नहीं आया जो बताता।"

फिरा न मुल्के अदम से कोई कि मैं पूँछू।
मुसाफ़िरो कहो कि मंज़िल पै क्या गुज़रती है ॥

मनसुखा—"महाराज जी ने मार्ग के लिये कुछ सामग्री भी ली अथवा नहीं ?"

बता ऐ खाक के पुतले, कि दुनियाँ में किया क्या है।
अदम के वास्ते तोशा, बता तूने लिया क्या है ॥
तुझे मालूम था यह दिन, ज़रूर एक रोज़ आयेगा।
कफ़े अफ़सोस तू मलता हुआ, दुनियाँ से जायेगा ॥
न सोचा जब तो कुछ भी, तू यहाँ आकर के अंधा था।
न पाया पीर मुर्शिद को, काल माया का फन्दा था ॥

राजा—"शोक कुछ नहीं। यों ही जीवन अकार्थ गया।"

मनसुखा—बहुत अच्छा ! अब यह छड़ी हाथ में ले लीजिये। आप मुझसे भी अधिक मूर्ख हैं। मैं तो यदि एक दिवस के लिये भी यात्रा में जाता हूं तो मार्ग के लिये खरिया (तोशा) लेजेता हूँ। वाहरे आपका सीधापन और भोलापन।

इस सादगी पै कौन न मर जाये ऐ खुदा।
लड़ते हैं और हाथ में तलवार भी नहीं॥

इतनी लम्बी यात्रा और यह बेपरवाही। राजा रोने लगा और शोक, खेद, पश्चात्ताप और निराशा से प्राण त्याग दिये।

इसी प्रकार हम में से कितने प्राणी इस संसार में आते हैं। उसके गोरखधन्दे में फँस जाते हैं। जीवन का उद्देश्य कुछ है और उसको समझ कुछ और लेते हैं। इसीलिये हमारी 'मनुष्य बनो' की शिक्षा को ग्रहण कीजिये। अपना काम बनाइये औरों के काम आइये।

दाता दयाल जी का अमूल्य उपदेश

क्या तुम नहीं देखते कि तुममें से कितने जज, बैरिस्टर, वकील, मुख्तार, ठेकेदार, इंजीनियर, ओवरसियर, डाक्टर, वैद्य, अध्यापक आदि बुरी किस प्रकार इस संसार के माया जाल में फँसे हुये हैं। तुममें से जो महाजन हैं, सेठ साहूकार हैं, कैसे भ्रम में पड़े हुये हैं। तुममें से जो रईस और पूँजी पति हैं वह किस प्रकार भोग विलास में ग्रस्त हैं। जिस ओर देखो जीवों ने जीवन के कुमार्ग को ग्रहण कर रक्खा है।

ऐमाले दुनियां देख कर अन्धा हुआ हूं मैं।
जितनी उड़ाई खाक वह आँखों में छा गई॥

वह समझते हैं धन सम्पत्ति उनके लिये नहीं किन्तु वह उनके लिये हैं। गृह मकान उनके लिये नहीं किन्तु वह उनके लिये हैं। उनका यह विचार है कि अधिकार, राज्य, शासन, मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा उनके लिये नहीं वरन् वे उनके लिये हैं यह मूर्खता और अज्ञानता नहीं तो और क्या है? कदाचित वह इतना ही समझ लेते कि सब कुछ उनके लिये है और वह परमात्मा के पुत्र हैं तो वह बुद्धिमान मक्खी की भाँति शहद भी खा लेते और पंख व बाल भी नहीं फँसते परन्तु वह लालची मक्खी के समान शहद के प्याले में गिर पड़ते हैं और हाथ पांव फँसा कर दुखी होते हैं।

मक्खी बैठी शहद पर, पंख गये लिपटाय ।
हाथ मले और सिर धुने, लालच बुरी बलाय ।।

दृष्टि को ऊँची करलो जिससे कि संसार का धोखा जाता रहे। फिर न केवल तुम्हारा जीवन ही विशाल बन जायगा किन्तु तुम दूसरों के जीवनों को भी विशाल बना सकोगे।

ज़िन्दगी सादा रहे, ऊँचे रहें तेरे ख्याल ।
जल्द हासिल होगा, तुझको आप इन्सानी कमाल ।।
हो इरादा मुस्तक़िल, यकसू रहे दिल का ख्याल ।
फिर नहीं हरगिज़ कभी, कोई यहाँ अमरे मुहाल ।।
दर्दमन्द और दुखी हो, करता है जो हमसे सवाल ।
उसको हम 'खुशदिल' बनाकर, दूर करते हैं मलाल ।।

जीवन का अन्त—कर्मभोग अथवा मौज (परम दयाल जी)

राधास्वामी धाम या निज नाम या कुरेद का इस्तताम या ज़िन्दगी का आदि और अंजाम।

उमरिया गुज़र गई मेरी किसी कुरेद की तलाश में।
भिन्न-भिन्न नाम रक्खे थे लोगों ने उस देश के ।।
फ़क़ीर मुसाफ़िर बनके हाँ तलाश उसकी करता रहा ।
तलाश में जो अनुभव हुआ उसका ज़िक्र करता रहा ।।

आरम्भ और मध्य की खोज में:—

सुमिरन करता था, ध्यान था, अनहद सुनता था ।
अब इनसे परे, इक और ही रास्ता देखा ।।
वहाँ खेल है फ़क़त सुरत का, नहीं देह मन से काम ।
इस राह पर चलने से, मैंने पाया है निज धाम ।।
निजधाम कहूं, निज अंजाम कहूँ, या कुरेद का इस्तताम ।
आज रात उस जगह गया, जो शायद हो अन्त मुक़ाम ।।
शायद यही हो वह दशा, जिसे कहते राधास्वामी धाम ।
सुरत उड़ी खो गई अहा, अपना निशान और नाम ।। किन्तु:—

फ़िर हूँ तन में, मन में, फिर वही मेरा मकान।
क्या है यह खेल अजब मैं खुद हूं हैरान॥

मित्रो! विचार होता है कि संभवतः मेरे मस्तिष्क की त्रुटि हो। किन्तु मैं अब चेतवान हूँ। इस संसार की सब बातों को समझता हूं। हिसाब किताब में दिमाग़ ठीक है। कल की मौज जाने। अपने अनुभव को अथवा जो मुझ पर बीत रही है उसकी पुष्टि का होना एक प्राकृतिक स्वभाव है। दाता दयाल जी का वाह्य रूप है नहीं जो उनसे पूछूँ। अन्य महा पुरुष स्पष्ट वर्णन से कार्य नहीं लेते। इसलिये सन्त कबीर की वाणी ही गुरू का काम दे रही है।

कहूं हंसा उस देश की बतियाँ। जहाँ नहीं होत दिन रतियाँ॥

यह ठीक है। उस अवस्था में मुझे दिन रात का भान नहीं था।

नहीं रवि चन्द्र और तारा। नहीं उज्यार अँधियारा॥

यह भी सत्य है। क्योंकि आरंभिक साधनों में अपने अंतर सूर्य, चन्द्र और तारागण दृष्टिगोचर होते थे। अब वह नहीं होते। केवल एक चेतन्यता तो अवश्य है किन्तु उस चेतन्यता में न प्रकाश है और न अँधकार ही।

नहीं तहाँ पवन और पानी। गये बही देश जिन जानी॥

अहा! यह भी सत्य है। जिसने इस अवस्था को प्राप्त किया वही जान सकता है।

नहीं तहाँ धरन आकासा। करे कोई संत तहाँ बासा॥
वहाँ गम काल की नाहीं। तहाँ नहीं धूप और छाँहीं॥

काल क्या है? परिवर्तनशील दशा। शेष सब बातें ठीक हैं। किंतु फिर वहाँ से चेतन्यता क्यों आई? बस इसका उत्तर नहीं मिलता। फिर सोचता हूँ। सन्त कबीर भी तो उस अवस्था का उल्लेख चेतन्यता में आकर करते हैं। बस इस विचार से शान्ती है और संतोष है। परन्तु इस अवस्था को प्राप्त करने के लिये जितने पहिले साधन अभ्यास थे वह सहायक हुये किन्तु वह पूर्ण न थे।

न योगी योग से पावे, न तपसी देह जरवावे।
सुरत में ध्यान से पावे, सुरत का खेल जेहि आवे॥

मैं यह लेख क्यों लिख रहा हूं? लाखों प्राणी अपने इस कुरेद को मिटाने के लिये अनेक यत्न करते रहते हैं। मैंने भी किये हैं? उनके लिये अपना अनुभव वर्णन कर रहा हूं कि मित्रो! यह आरंभिक साधन, सुमिरन, ध्यान और भजन केवल मन की अवस्था को नियंत्रण में रखने के लिये हैं। जब यह नियंत्रण में हो जाता है। तब केवल सुरत का खेल शेष रह जाता है।

सोहंगम नाद नहीं भाई। न बाजे शंख शहनाई॥
निहःक्षर जाप तहाँ जापे। उठत धुन सुन्न से आपे॥

यह अवस्था जब तक प्राणी का मन अजपा (अमन) नहीं होता अर्थात समाप्त नहीं होता। आगे जाना कठिन है। जहाँ यह समाप्त होता है वह सुन्न अवस्था है। फिर आगे स्वयं मार्ग मिलता है।

मंदिर में दीप बहुबारी। नैन बिन भई अँधियारी॥
लाख प्राणी योग करे। अपने अंतर प्रकाश, सूर्य चन्द्र, उत्तन्न कर करके देखे। इस अंतिम अवस्था से वंचित रहता है।

कबीरा देश है न्यारा। लखे कोई नाम का प्यारा॥
वह नाम जिससे इस देश, निज धाम, राधास्वामी धाम अथवा जीवन का अंत (लक्ष्य) पद प्राप्त होता है। वह नाम चौथे पद में है। वह शरीर, मन और प्रकाश आदि से आगे है।

नाम रहे चौथे पद मांहीं। यह ढूंढ़े त्रिलोकी मांहीं॥
सत्त कबीर महिमा नाम की इस प्रकार वर्णन करते हैं।

सुरतिया नाम से अटकी॥ टेक॥
कर्म भ्रम और वेद बड़ाई, या फल से सटकी।
नाम के चूके पार न पहिये, जैसे कला नट की॥
जागत सोवत सोवत जागत, मोहि पड़े चटकी।
जैसे पपिहा स्वांति बूंद को, लाग रहे रटसी॥

भरम मटकिया सिर के ऊपर, सो मटकी पटकी।
हम तो अपनी चाल चलत हैं, लोग कहें उलटी॥
प्रीति पुरानी नई लगन है, या दिल में खटकी।
और नज़र कछू आवत नाहीं, नहीं माने हटकी॥
प्रेम की डोरी में मन लागा, ज्ञान डोर झटकी।
जैसे सरिता सिन्धु समानी, फेर नहीं पलटी॥
गहो निज नाम खोज हृदय में, चीन्ह पड़े घटकी।
कहें कबीर सुनो भाई साधो, फेर नहीं भटकी॥ सुरतिया०

फिर नाम क्या है? मैंने समस्त आयु इसी धुन में खो दी। जो कुछ अनुभव हुआ वह इस सत्त कबीर के इस शब्द ने सिद्ध कर दिया है।

चूंकि यह नामधारियों का क्षेत्र अब एक टोली दल अथवा धर्म बन गया है और इसके कारण यह नामधारी विभाजित होगये हैं। कोई कहता है नाम अमुक पुरुष से, डेरे धाम से, अथवा धर्म-पंथ से मिलता है। मैं कहता हूँ नाम तुम्हारी सुरत में है।

नाम नाम नाम सब नाम को रोवते।
नाम हमरी ज़ात है कोई नहीं सोचते॥
न उपराम संसार से हुआ न कामिल इन्सान मिला।
कैसे कोई राज़ समझे नाम नाम गावते॥
भूल भरम पड़ा जगत में जगत भरमा गया!
जो शै उसके पास थी वह उसके लिये तरस फिरा॥
कौन बड़ा कौन छोटा कौन पूरन है यहाँ।
भरम में आकरके इन्सान भरमा गया॥
हम भी भरमाये थे भरम से निकल गये।
राज़ निहफ़्ता पागये गुरु ने कीनी दया॥
दयाल बनके बेख़ौफ़ हो देते हैं सदा।
ऐ इन्सान राज़ समझ दुनियाँ में शान्ती को ला॥

यह रहस्य सतसंग और साधन से प्राप्त होता है। इसलिये यह कर्मभोग वश कार्य करता हूं।

धन्य हैं वह प्राणी जिनको इस नाम का खब्त नहीं हुआ। किन्तु जिनको संसार के कामों के खब्त हैं उनसे वह अच्छे हैं जिनको नाम का खब्त है। मुख्य और वास्तविक जीवन उनका है जिनको कोई खब्त नहीं। वह बालकों की भाँति प्रसन्न चित्त रहते हैं। और प्रसन्नता पूर्वक जीवन व्यतीत कर, प्रसन्नतापूर्वक शरीर त्याग देते हैं। "बाल रूप होय जग को छेके।" (स्वामी जी महाराज)

चेतावनी (दाता दयाल)

सोच करे क्यों मन में ॥ टेक ॥
समरथ सतगुरु दीन दयाला, रक्षक घर और बन में।
निरखूं छिन-छिन गुरु की मूरत, अपने मन दरपन में ॥
तिल के भीतर गुरु विराजे, देख ले अपने तन में।
नैनों में तेरी सांवली मूरत, लागे चित्त दर्शन में ॥
सोवत जागत ताड़ी लागे, रहो तुम इसी जतन में।
पल पल सोधो नाम रसायन, सुमिरन ध्यान भजन में ॥
बचन विलास पाठ और पूजा, सब हो श्रवन मनन में।
सूरा नाम फ़क़ीर ने धारा, लड़े काल के रन में ॥
काम क्रोध मद मस्तक फोड़े, उदासीन रहे मन में।
किसका सोच करे नर बौरे, गुरु प्रगटे निज जन में ॥
राधास्वामी चरण शरण बलिहारी, गुरु मिले याही पन में ॥

पद निर्वाण

पाया पद निर्वान साधो, पाया पद निर्वान ॥ (टेक)
नहिं वह कर्म न भक्ति भाव कुछ, नहिं वह सूखा ज्ञान।
गुरु की दया से लखे गुरु मूरत, घटहि में सब दरसान ॥
बाजत बांसुरी बीन चिकारा, सुन सुन मन हरखान।
झलकत झिलमिलि चमकत बिजली, माया काल पछतान ॥

अगम पंथ में अगम बिराजा, अगम में मिला ठिकान।
ऊँचे चढ़ सुरत भई मतवाली, लिया प्रीतम पहिचान॥
जहाँ जहाँ चलूँ वही मेरा तीरथ, जो जो करूँ सो ध्यान।
जाग्रत स्वप्न एक सम लेखूं, खुले नैन विज्ञान॥
बन पर्वत घर भीतर बाहर, जंगल और मैदान।
जहाँ जहाँ देखूं अद्भुत लीला, क्यों कर करूँ बखान॥
फूल में बास मेंहदी में लाली, जीव जन्तु में प्रान।
चकमक मध्ये आग दिखाई, अलख जोत झलकान॥
कहाँ के योग कहाँ के जप तप, कहाँ के संयम ध्यान।
राधास्वामी चरण शरण बलिहारी, मिटगया मन का मान॥

मन के दोष और योग (ले० दाता दयाल)

प्राणी में पाँच प्रकार की दशायें दृष्टिगोचर होती हैं। जाग्रत स्वप्न, सुष्पती, तुरिया और तुरियातीत जिनके कारण उसमें अयोग्यता की त्रुटि बनी रहती है और विचित्र बात यह है कि जिसको हम अयोग्यता कहते हैं वही उन्नति और सुधार पाकर उसकी योग्यता बन जाती है। यह पाँच दोष मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार और अनुभव हैं। चित्त में घड़ी की सुई की भाँति गति होती रहती है जिस प्रकार कोई व्यक्ति किसी वस्तु को बारम्बार छेड़ता रहे वैसे ही यह चित्त भी पल पल चोट लगाता रहता है और अपनी हार्दिक स्मरण शक्ति के परिणामों से स्वयं भी घायल होता रहता है। इसका उदाहरण मानव के पलकों की गति से किसी सीमा तक दिया जा सकता है। यह पलक केवल चित्त ही के अन्तर्गत गति में रहते हैं। जो व्यक्ति जिस प्रकार निबल विचारों और त्रुटि पूर्ण और मलीन भावनाओं का अधिक अभ्यासी होगा उसके पलक भी वैसे ही अधिकता के साथ झपकते रहेंगे। यह अत्यन्त मानसिक निबलता का चिन्ह है। बच्चों को देखो जब तक उन पर

माया और भ्रम का आक्रमण नहीं होता वह एकटक देखने के अभ्यासी होते हैं और यही दशा पशुओं की भी रहती है, किन्तु जहाँ सांसारिक वासनायें अधिकता के साथ उन पर आक्रमण करने लगती हैं उसी प्रकार उनकी पलकें भी बार बार अधिकता के साथ झपकती रहती हैं, यह अत्यन्त कायरपन, निर्बलता और हीनता की दशा है। जब प्राणी नितान्त ही संसारी बन जाता है संसार का रंग उस पर अधिकता से चढ़ जाता है। तब उसका यह स्वभाव स्वयं हो जाता है और उसका मन वैसा ही बन जाता है। जिस प्रकार उबलते हुए सोते का जल खौलता रहता है अथवा खिले हुये पुष्प से उसकी सुगंध निकलती रहती है। यह चित्त की त्रुटि है।

मन में इसी चित्त की गति के कारण क्षोभ उत्पन्न होता है और वह दो रूपों में प्रकाट्य होता है। संस्कृत में जिनको संकल्प विकल्प कहते हैं। यह दोनों शब्द योग्यता और अयोग्यता के संतुलन हैं। मन से जो प्रतिकूल और अनुकूल विचारों की धाराएँ निकलती रहती हैं वही संकल्प और विकल्प कहलाती हैं। उनको तुम अच्छे, बुरे, घृणा, प्रेम और दूरदर्शिता और अदूरदर्शिता के अर्थों में प्रयोग कर सकते हो। प्रत्येक व्यक्ति के मन में यह विद्यमान रहते हैं और इन्हीं के कारण चित्त की फुरना है। चित्त बारम्बार चोट लगा-लगा कर हँसता रहता है। इस कारण से मन पर भी वही प्रभावित होकर उसमें अनुकूल और प्रतिकूल दशायें उत्पन्न कर देता है। चित्त ही की दुचिताई से मन में बुरे भले भाव उत्पन्न होते रहते हैं और चूँकि प्रकृति के परिवर्तन शील मण्डलों में यह दशायें बनने और बिगड़ने की स्थिति होने और मिटने के रूप में विद्यमान रहती हैं। इसलिये मन चित्त की नींव पर समस्त खल तमाशे दिखाता रहता है। चित्त की बारम्बार की गति हृदय के अनुकूल और प्रतिकूल भ्रमों के रूप में स्थित होती रहती है और और इसी का नाम मनन है जो मन का संकल्प मय साधन है और

जिसको सोचना भी कहा जा सकता है। यह इस मन की निर्बलता और त्रुटि है। तीसरी दशा, बुद्धि अपनी बारी चित्त और मन के अन्तगत आकर निर्णय करने का प्राकृतिक आधार बनती है। अपने और अन्य का निर्णय और अधिकता और न्यूनता का निर्णय, अच्छे और बुरे का निर्णय उसका स्वभाविक गुण है और इसकी जड़ मन के सोच विचार पर है, इसलिये इसको भी निवलता कहते हैं। बुद्धि संस्कृत शब्द बुद्ध जानने अथवा ज्ञान रखने से निकलती है और इसका गुण ज्ञान है। चौथी दशा अहंकार की है।

अहङ्कार मैंपने अहम ममत्व के भाव को पुष्ट करता रहता है यह उसकी त्रुटी और दोष है।

यह इस मन की चारों दशाओं की संक्षिप्त किन्तु स्पष्ट व्याख्या है। चित्त बारम्बार चोटें लगाता हुआ चेतता है। मन इन चोटों को सन्देह जनक क्रम से सोचता है। और बुद्धि सोच विचार के मध्य निर्णय करती है। और अहंकार निर्वलता और अबलता को लिये हुये इस निर्णय की पुष्ट भी करता रहता है। और इस पर ठहरने के प्रयत्न में भी लगा रहता है। इन चारों के परे इन सब की मिश्रित दशा भी है जो अनुभव कहलाती है। और इस अनुभव की नींव चित्त मन, बुद्धि और अहंकार से परे है। अनुभव का अनुवाद आन्तरिक बोधभान भी किया जा सकता है परन्तु वह अनुभव की भाँति स्पष्ट नहीं है। अनुभव नितांत निर्णय है जो स्मरण शक्ति के आधीन नहीं है।

यह पाँचों दशायें पाँच प्रकार के विभिन्न मानवीय दलों वर्गों से सम्बन्धित हैं और यह पाँचों ही आत्मिक दोष (त्रुटि) कहे जाते हैं यद्यपि इनमें ऊँची और नीची श्रेणियाँ भी स्थापित हैं।

साधारण तुच्छ श्रेणियों के व्यक्तियों में दुचिताई रहती है क्यों कि वह चित्त के आधीन हैं। तनिक और उच्च श्रेणी के व्यक्ति में मन के सन्देह और विचार रहते हैं। क्योंकि वह मन के दास हैं

बुद्धिमान व्यक्तियों में बुद्धि रहती है क्योंकि उन्होंने बुद्धि को महत्व दे रक्खा है। इसी प्रकार किसी को किसी बात का अहङ्कार है, अकड़ है, हठ है, पक्षपात है। यह सब दोष हैं। अनुभव उन उत्तम पुरुषों का गुण है जो इन सब दोषों से रहित हैं और विख्यात हैं। चूँकि अनुभवों में भी भिन्नता रहती है। जो सूक्ष्म और महीन दोष हैं। इसलिये यह पाँचों ही मन के दोष कहे जाते है।

पत्रोत्तर। परम दयाल जी का ठाकुर गिरधर सिंह जी को

आपका और भाई जो का पत्र आज ही साथ साथ मिले। हनमकुन्डा सतसंगघर के निर्माण का पत्थर व मंडप के कार्य को आपने प्रारम्भ कर दिया। अनेक सज्जन सम्मिलत हुए। मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

दाता दयाल महर्षि जी महाराज के साहित्य के सार तत्व को प्रत्येक व्यक्ति नहीं समझ सकता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने भाव के अनुसार दूसरे की वाणी को समझता है। सम्भव है मैंने भी पूर्ण रूपेण न समझा हो। किन्तु जीवन की अंतिम दशा को पहुँचने के पश्चात जो समझा है वह स्पष्ट शब्दों में कह देना चाहता हूं। जिस से कि किसी को भ्रम और संशय न रहे। मैंने जो कुछ समझा वह केवल दातादयाल महर्षिजी की पवित्र पुनीत विभूति से ही सम्बन्ध नहीं रखता है बल्कि सत्त कबीर, गुरु नानक, राधास्वामी दयाल व अन्य महापुरुषों की वाणियों से भी अधिकांश सम्बंधित है। मुझे इन समस्त महापुरुषों की शिक्षा उस पवित्र पुनीत विभूति ने दी थी।

ध्येय सदैव कुछ और होता है। प्राणी इस ध्येय को प्राप्त करने के लिये विभिन्न प्रकार के कार्य करता है। और उसको स्वयं पता नहीं होता है कि वह किस ध्येय की पूर्ति के लिये कार्य कर रहा है। संतों का ध्येय क्या है? क्या कहूँ? सत्त कबीर का एक शब्द है जिसकी व्याख्या मैंने देहली दसहरे के सतसंग पर की थी।

कहत कबीर सुनो साधो, मानो बचन हमार।
जो भल चाहो आपना, परखो वचन हमार॥

किन्तु मुझे कोई पूर्ण शब्द अपने भाव अर्थात जीवन के वास्तविक ध्येय को वर्णन करने हेतु न मिल सके। यदि मौज ने अवसर दिया और बसंत पर आ सका तो अपने वास्तविक भाव और उस ध्येय को वर्णन कर जाऊँगा।

दाता दयाल का विचार और संस्कार जो इस हनमकुन्डा सतसंगघर का ४०-४२ वर्ष पूर्व का दिया हुआ है वह इसी ध्येय की पूर्ति करने के लिये है। और उनका कोई स्वार्थ नहीं था।

आज दिन तक संतों ने सैन बैन किया। कोई समझ सका समझ गया वरन चलता रहा इसलिये मुझे अधिकाँश विश्वास है कि यह हनमकुन्डा का सतसंग संसार में नवीन जाग्रति, नवीन, विचार, नवीन भाव, और नवीन सारभेद फैलायेगा। जिससे कि उस वास्तविक ध्येय की पूर्ति हो और मानव जाति का कल्याण हो।

प्रत्येक कार्य तभी सफल होता है जब कार्यकर्ता निश्पक्ष, निःस्वार्थ और निर्लोभ होते हैं। यदि स्वार्थ होता है तो उस ध्येय की पूर्ति का होता है न कि अपना।

हुजूर नन्दू भाई जी महाराज और आप सब सज्जन जहाँ तक मेरा विचार है निःस्वार्थ हैं। यह और बात है कि आपमें से अनेक को ध्येय का पता न हो।

यह मेरा कर्त्तव्य है कि अधिकारियों को ध्येय और लक्ष्य का ज्ञान दे जाऊँ। किन्तु इस ज्ञान के अधिकारी बहुत कम व्यक्ति होते हैं। खैर मेरा जगत कल्याण का कर्त्तव्य है। जहाँ तक हो सकेगा अपने कर्त्तव्य का पालन करता रहूँगा।

मैं सच्चे हृदय से आशीर्वाद देता हूँ कि जो जो सज्जन इस सतसंग घर अथवा इसकी शिक्षा के प्रचार में सहयोग देंगे उनके सांसारिक और परमार्थिक जीवन में दोनों प्रकार कल्याण होगा।

बहुत उच्च अवस्था में चला गया हूं। मौज घसीटे लिये जा रही है। उसकी इच्छा में प्रसन्न रहो। इस पत्र को 'मनुष्य बनो' पत्रिका के लिये भेज देना। और समय पर दयाल में भी प्रकाशित करा देना।

---

* भाव की महिमा और महत्व *

भाव का भूखा हूं मैं, और भाव ही इक सार है।
भाव से मुझको भजे तो, भव से बेड़ा पार है॥
भाव बिन कोई पुकारे, मैं कभी सुनता नहीं।
टेर भक्ती भाव की, करती मुझे लाचार है॥
भाव बिन सर्वस्व भी दे, मैं कभी लेता नहीं।
भाव से इक फूल भी दे, तो मुझे स्वीकार है॥
अन्न धन अरु वस्त्र भूषण, कुछ न मुझको चाहिये।
आप हो जायँ मेरे, बस यह मेरा सत्कार है॥
जो मुझी में भाव रखकर, मेरी लेता है शरण।
उसके और मेरे हृदय का, एक रहता तार है॥
भाव जिस जन में नहीं, उसकी मुझे चिन्ता नहीं।
भाव वाले भक्त का भरपूर, मुझ पर भार है॥
बाँध लेते भक्त मुझको, प्रेम की ज़ंजीर में।
इसलिये संतों के द्वारा, भूमि पर अवतार है॥
विश्व प्रेमी भाव से, करते हैं अर्पण आपको।
जो भी कुछ उनको दिया है, प्रेम भक्ति प्यार है॥
भाव को हम शब्द कहते, शब्द की महिमा कठिन।
शब्द गुरु का आसरा लो, और सब बेकार है॥

काम दिल से करता हूं, मैं सुबह मसा।
फ़ुरसत मिली तो करता हूं, यादे खुदा॥

ज़िन्दगी सादा है, ख़्यालात हैं ऊँचे।
सच कहता हूं, रहता हूं राज़ी ब रज़ा ॥

ख़ुशी की ज़िन्दगानी है, ख़ुशी का है सफ़र अपना।
कि 'ख़ुशदिल' ख़ुशकलामी से, बना लेते हैं घर अपना ॥

कर्म भोग अथवा मौज (परम दयाल जी महाराज)

आज मूत्र रोग की रुकावट के कारण शारीरिक रूप में ठीक नहीं हूँ। सेंक आदि करता रहता हूं। चूँकि प्रास्ट्रेट गिलान्डस का आपरेशन के अतिरिक्त और कोई मुख्य चिकित्सा नहीं है। और शारीरिक दशा आज्ञा नहीं देती इसलिये सम्भव हो सकता है कि अब यह जीवन अधिक दिन तक न रहेगा।

अपने जीवन की खोज पर दृष्टि गई। जीवन क्या है? एक प्रकार की सनसनाहट है। शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शूं-शूँ है। जब तक शरीर के अंग और इन्द्रियाँ कार्य करती हैं, शरीर स्थिति है। और जब तक ज्ञानेन्द्रियाँ हैं मन स्थिति है और जब तक प्रकाश और शब्द है आत्म अवस्था विद्यमान है। इससे आगे मौन है।

जिस मौन का अनुभव हुआ है वह अभी तक इस जीवन के रहते हुए ही के अनुभव की अवस्था है। किन्तु इस जीवन के पश्चात क्या होगा। ज्ञात नहीं। इच्छा किसी समय अवश्य होती है कि मौज शक्ति और साहस दे कि बता सकूं कि आगे क्या होगा?

इस समय तक तो यही अनुभव है कि जीवन एक चेतन का बुलबुला है। शरीर तो इन अंगों के भङ्ग होने से समाप्त हो जाता है। मन सदैव निर्विकल्प समाधि से समाप्त होता है। और आत्म-पना सुरत शब्द योग अर्थात प्रकाश और शब्द के मण्डल से पार जाने के पश्चात समाप्त होता है। परे जा कर सर्वव्यापी अवस्था होती है। उसका अन्त नहीं मिला।

वह बे अन्त है उसका वार न पार मिला।
जितना खोजा उतना ही वह अगम अपार हुआ।
यह जीवन इक खेल है, मौज ने खूब बनाया।
उसकी जाने आप वह क्यों उस खेल रचाया॥
सन्तन करी खोज आखिर को अनाम पद ठहराया।
उसके अनुभव के लिये, सुरत शब्द मत गाया॥
हमने खोजा उम्र भर, सुरत शब्द के माहिं।
खोजत-खोजत खो गया, अंत मिला है नाहिं॥
सन्त पल्टूदास जी ने भी यही कहा है।
पल्टू दीवार क़हक़हा मत कोई खोजन जाय।
मैं कहता हूँ दोस्तों इन्सान के वस नहीं हाय॥
मौज ही मौज मौज ही मौज है।
कुल रचना में मौज की चौज है॥
एक आश और विश्वास है उसकी, उससे मेरा प्यार।
वही है दयाल दाता सतगुरु, उसीके नाम हजार।
जब तक जान प्रान है, उसीसे है मेरा प्यार।
गो वह अकह अगाध हैं, मन बुद्धि से पार॥

इसलिये कर्मभोग वश कहता हूं। भारत वासियो! तुमने अपने भ्रम, अज्ञान और अहंकार में आकर धार्मिक और पान्थिक जगत बना बना कर परस्पर विभाजित हो गये हो। यह अज्ञान और मूर्खता है। मानव मानव के काम आवे। कार्य करे। जब तक जीवन है। उस मालिक, ज़ात, अकह और अगाध का प्रेम रखते हुये परस्पर प्रेम-प्रीति और मनुष्यता में जीवन बिताने में ही भलाई है। यह बात समझ में आई है। चूंकि यह रहस्य समझ में नहीं आता है इसलिये सत्त पुरुषों का सतसंग है। जिससे कि मानव की बुद्धि निश्चय आत्मिक हो जाय और जीवन व्यतीत करने का सत्य मार्ग मिल जाय। साधन और अभ्यस मन की चंचलता को दूर करने और

सहारा लेने के लिये अनिवार्य है। मैंने अपने जीवन की खोज के विभिन्न सोपानों का अपने कर्म भोग वश अपने विभिन्न लेखों और सतसंगों में उल्लेख किया है। संभव है मेरे विचारों से किसी सज्जन अथवा धर्म-पन्थ वालों को कोई ठेस पहुँची हो। किन्तु मैंने अपने हृदय से किसी रूप में भी किसी के विरुद्ध नहीं कहा। फिर भी मैं सब से क्षमा प्रार्थी हूं।

अज़ल से जानिबे हस्ती तलाशे यार में आये।
हवाये गुल से हम इस वादिये पुरख़ार में आये।

अपने बस की बात न थी। मालिक की इच्छा पूर्ण हो। प्राणीमात्र को शान्ति।

दरियाए मारफ़त है, तमद्दुज में रोज़ो शब।
गोता लगा ख़ुशी से, कि मोक़ा मिला है अब॥

राज़ सीना कह रहा हूँ ऐ अज़ीज़। अक़्ल से कर तू सदाक़त की तमीज़॥
जब तू इन्साँ है तो तुझमें अदल है। अस्ल का इन्साँ ही सच्ची नक़ल है॥

दिल में है दिलदार दिल की जान भी।
दिल ही में है जिस्म इसकी शान भी॥
जिसने समझा दिल को वह दिलबर बना।
दिल नहीं समझा तो सग और ख़र बना॥

यह ज़माना रङ्ग बदला करता है मेरे अज़ीज़।
देख नैरंगी को उसके होजा इन्साँ बातमीज़॥

लुत्फ़ नैरंगी की लज्ज़त ले कि तू इन्साँ बने।
छोड़कर इस जिस्म ख़ाकी को तू बिलकुल जाँ बने॥

तुम कौन हो कहाँ हो? कुछ तो बता दो मुझको।
आये कहाँ से? अपना क़िस्सा सुनादो मुझ को॥
अठखेलियों में पड़कर भूले हो आप को तुम।
मैं पूछता हूं तुम से अपना पता जता दो॥
कहते हैं तुमको अशरफ़ मख़लूक़ दहर के सब।
अपनी शरफ़ का जलवा कुछ तो ज़रा दिखा दो॥

परम दयाल जी का पत्र विश्व प्रेमी के नाम

मौज लाई सन्त मत में, इसको समझने में उमरिया गुज़र गई।
ज़िन्दगी ने पलटा खाया, कुछ की कुछ अब बन गई ॥
क्या बनी क्या कहूँ, जुज़बियत सब जाती रही।
कुल्लियत में बदल करके, लामुहीत अब हो गई ॥
कशमकश थी जो इसमें, वह सारी खतम हुई।
कैसे हुई यह राज़ है, उसको प्रगट कर रही ॥
इन्सान जुज़बियत से, निकलना चाहता नहीं और सुनता भी नहीं।
हद से बेहदी में, इन्सान अफ़सोस आना चाहता नहीं ॥क्यों॥

सीमितपने अथवा अंशपने का प्रत्येक व्यक्ति अपना मण्डल (केन्द्र) रखता है। जिस प्रकार पृथ्वी का आकर्षण प्रत्येक वस्तु को अपनी ओर खींचता रहता है। इसी प्रकार प्रत्येक जीवन प्रत्येक आत्मा प्रत्येक वस्तु को अपने ही लिये प्रयोग करना चाहता है। याज्ञवल्कि ऋषि घोषणा करते हैं। हे मैत्रि ! पिता, पिता के लिये प्रिय नहीं बल्कि आत्मा के लिये है। ईश्वर, ईश्वर के लिये प्रिय नहीं बल्कि आत्मा के लिये है। आदि आदि। यही कारण है कि प्रत्येक जीवन अथवा आत्मा सीमितपने अथवा अंशपने के कारण जो कुछ करता है अपने ही लिये करता है। किन्तु दातादयाल की पुनीत पवित्र विभूति ने मुझे संत मत की शिक्षा व संस्कार दे कर इस आत्मपद अथवा अंशपने से निकाल दिया। यहाँ तक लिखने के पश्चात मैंने लेखनी छोड़ दी और मौन हो गया। क्यों ? इस लिये कि:—"कौन समझेगा कि मैं क्या हूँ लिख रहा।" यही कारण है कि सीमितपने व अंशपने की शिक्षा व संस्कारों के विचार वाले सज्जन मेरे साथ सहमत नहीं होते हैं। इस बार जैन मुनि सुशील कुमार जी होशियारपुर पधारे, मिले और कहने लगे:—फ़क़ीर साहब आपकी बात को कौन समझेगा। बात सत्य है। "हमरी वाणी वह लखे जो खरापुर बिया होय।"

मैं स्वयं इस सन्त मत (राधास्वामी मत) को नहीं समझ सकता था। वाणी में उल्लेख है कि इन्द्र, मुनीन्द्र भटक गये। वशिष्ठ, विश्वामित्र तक भी इस रहस्य से कोरे रहे जो राधास्वामी दयाल ने दिया है। ऐसी-ऐसी वाणी उपस्थित हैं। मैंने अपनी आयु केवल इस रहस्य को समझने में खोदी और आज कर्म भोग वश प्रमाण सहित कह रहा हूं कि वास्तव में जो सीमितनने अथवा अंशपने में हैं वह इस ऊँचे से ऊँचे पद जिसका कि संकेत मैंने सर्वव्यापकता, अगमता और अनर्वचनीय के शब्दों से किया है नहीं पहुँच सकते हैं।

सीमितपना और अंशीयपना क्या है? जीवन का किसी एक दशा में रहना ही सीमितपना और अंशीयपना है। जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरिया अथवा तुरियातीत की अवस्था यह समस्त अंशीय-पना ही है। आत्मपद, द्वैत, अद्वैत आदि यह समस्त भी सीमित पद और अंशीयपद ही हैं। अन्नमय कोश, प्राणगय कोष, मनो-मय कोष, विज्ञानमय कोष और आनन्दमय कोष आदि यह समस्त भी उसी गिनती में हैं। क्यों ऐसा कह रहा हूं? इसलिये कि मैंने उस परमपद, असीमितपद पूर्ण पद की अवस्था का अनुभव किया है। यहां पहुँच कर यह उपरोक्त वर्णन की हुई अवस्थायें समाप्त हो जाती हैं। राधास्वामी दयाल की वाणी है:—

नहीं खालिक़ मख़लूक़ न खिलक़त। कारन कारज नहीं वहाँ दिक़्क़त॥
राम रहीम करीम न केशव। जात सिफ़ात न अव्वल आखिर॥आदि२

बारह मासा के ज्येष्ठ मास में अंकित है। स्वयं पढ़ लो। इस अन्तिम पद का नाम रक्खा हुआ है:—अकह, अगाधि, अनादि, अनामी।

अब प्रश्न है कि इस अवस्था की कोई क्यों इच्छा करे? इस सीमितपने और अंशीयपने का वास्तविक आकर्षण मानव को जो इस अकह, अगाध और अनामी का अंश है ऊपर जाने नहीं देता। इसलिये यदि जनसाधारण मेरी बात को नहीं समझते हैं तो आश्चर्य की बात कौनसी है।

किन्तु चूंकि वर्तमान संतमत ने नाम तो रक्खा कुछ और शिक्षा देते हैं कुछ और स्वयं हैं कुछ, इसलिये यह सोचकर कि सम्भवतः लाखों प्राणी इस सन्त मत में उस अवस्था में पहुंचने के इच्छुक हों उनको बता जाऊँ कि तुम इस वर्तमान शिक्षा से जो तुमको यह गुरुजन और आचार्य दे रहे हैं नहीं पहुँच सकोगे। इसलिये ऐ मुन्शीलाल मैंने यह काम किया है केवल जीवों के हित के लिये और कोई स्वार्थ नहीं है। साथ ही अंशीयपन अथवा सीमितपन में रहते हुये जीवन व्यतीत करने की विधि बताई है। यह शिक्षा क्या है जिससे कि तुम पूर्णतः और अमर पद तक पहुँच सकते हो। वह है किसी पूर्ण पुरुष का सतसंग और उसका प्रेम बस।

सत्त कबीर आदि सन्त हुए हैं जिन्होंने एक शब्द लिखा है।

कहें कबीर सुनो भई साधो, मानो बचन हमार।
जो भल चाहो आपना, परखो करो विचार॥

मुन्शीलाल इस शब्द को ध्यानपूर्वक पढ़ो। सत्त कबीर की शब्दावली में है। अब तुम इस शब्द के भाव को समझने के योग्य होगे। यह जिस प्रकार धर्म पन्थ उनके सिद्धान्त उस मालिक के मिलने के हैं सब अज्ञान और भ्रम के कारण प्राणी ने बनाये हैं। मैं विवशतः सत्त कबीर के साथ सहमत हो रहा हूं। और वह विवशतः मुझ मेरे जीवन की खोज और उसके परिणाम के कारण से है। इस बाह्य खोज के भ्रम से मुक्त करने वाले सतसंगी भाई हैं।

जो कहना चाहता हूं उसके लिए शब्द नहीं मिलते। न कोई श्रेष्ठ युक्ति ही समझाने की समझ में आती है। केवल उदाहरण देता हूं। वह भी सत्य!

एक सप्ताह हुआ सेठ दुर्गादास का पत्र आया था। उसमें उसने लिखा था कि समस्त रात्रि उसने मेरा सतसंग सुना। अधिक भीड़ थी और मैं मस्ती की दशा में झूमता था। उस दशा में वह लिखता है कि वह मेरे पास आया और प्रणाम किया। वह लिखता है कि

मैंने उसको कहा। "दुरगियाँ तुम मुझसे प्रेम करते हो लो प्रसाद खाओ।" उसने प्रसाद खाया और उसको चेतन्यता आगई। उस समय प्रातः हुई हुई थी। वह मस्त था। हर्ष में झूम रहा था। वह काम पर उसी मस्ती की दशा में गया। वहाँ उसको मेरा एक पत्र मिला जो मैंने जिस दिन उसने यह दृश्य देखा। उसी दिन प्रातःकाल मैंने लिख कर भेजा था। वह उसको पढ़कर और भी मस्त हो गया।

वह यह समझता है कि मेरे सहानुभूति के विचार जो मैंने उस पत्र के लिखते समय उसे दिये थे। उनके कारण उसने रात्रि को यह स्वप्न देखा और उसको प्रसन्नता मिली! मुझे अब स्मरण नहीं आता कि मैंने क्या लिखा था। किंतु मैं इस घटना से नितान्त अनभिज्ञ हूँ। इस पत्र के लिखने के अतिरिक्त और मैंने कुछ नहीं किया। यह घटना वर्णन करते हुए मैंने मुनि सुशील कुमार जैन से निवेदन किया कि हे मुनिराज यह वर्तमान महात्माजन जैसा कि आपने कहा है कि मुझसे अप्रसन्न रहते हैं तो मैं क्या करूँ। जब मैं ऐसी घटनाओं से अनभिज्ञ होता हूँ तो संसार को क्या कहूँ? क्या झूँठ बोलूं? क्यों? केवल इसलिये कि मेरी मान प्रतिष्ठा हो। प्राणी धन दें डेरे, धाम आदि बनवा दें अथवा मेरे नाम का प्रोपेगण्डा करें। इस पर मुनिराज ने वर्णन किया :—फ़क़ीर साहब बात यह है कि यह सिद्धान्त टैलीविज़न के अनुसार कार्य करता है। आपके तथा अन्य महापुरुषों अथवा संकल्प शक्ति वालों के विचार धारों के रूप में दूसरों पर प्रभावित होते हैं।

मैं हँसा और मुनिराज से निवेदन किया। यह सत्य है। किन्तु जो महात्मा जन अपने अन्तर छल, कपट, स्वार्थ और भेद भाव रखते हैं रेडियेशन तो उनकी भी जायगी। किन्तु चूंकि उनकी भावनाओं में छल-कपट हेर-फेर निज स्वार्थ है इसलिये उनका हित तथा "रेडियेशन" किसी रूप में भी दूसरों को इस आवागमन के चक्र से निकाल

सकेगी और न किसी को पूर्णरूपेण रहस्य की ही समझ आ सकेगी। क्योंकि हित देने वाले स्वयं रहस्य से अनभिज्ञ हैं अथवा हेरा-फेरी करते हैं। जैसा महात्मा स्वयं है उसकी रेडियेशन वैसी ही जायेगी। इसलिये मैंने मुनिराज से कहा और ऐ मुन्शीलाल तुमको लिख रहा हूँ कि मैं इस संसार में विशेष मिशन ध्येय लेकर आया हूँ। जगत कल्याण का। संसार को सच्चा हित और सच्ची मति दिये जा रहा हूँ जिससे कि जीवों का कल्याण हो और इस जीवन में सुखी व शान्ति रहते हुये लक्ष्य की प्राप्ति कर जायें।

राधास्वामी दयाल, सन्त कबीर, गुरु नानक की शिक्षा यही है कि पूर्ण पुरुष की संगति उसकी रेडियेशन ही मनुष्य के लिये कल्याणकारी हो सकती है और ऐसी विभूति कभी कभी समय की आवश्यकता अनुसार मौज प्रकट किया करती है। उसका विचार, भाव और हित फैलाता है। इसलिए वास्तविक सतगुरु सच्चा हित, निष्काम प्रेम और सार ज्ञान ही हो सकता है न कि कोई देहधारी पुरुष।

चूँकि प्रत्येक स्थान पर हेर फेर का सौदा है। मौज ने मेरे मस्तिष्क को हिलाया है।

ऐ मुन्शीलाल मैं आपका कृतज्ञ हूं कि आपने मेरे कर्त्तव्य के पालन करने में मेरी बड़ी सहायता की। उसके बदले में मैं आपको तथा समस्त संसार को अपना शुद्ध पवित्र विचार देता हूँ कि आपको इस जीवन में ही प्रसन्नता, अचिन्तता, निर्भयता, पूर्णता और परम पद की प्राप्ती हो जाय और तुम अनआश्रित हो जाओ। जब तक मालिक की मौज है 'मनुष्य बनो' का प्रचार करते रहो।

यदि मेरा हृदय शुद्ध पवित्र है और कोई निज स्वार्थ और हेर फेर नहीं है तो सिद्धान्तिक रूप में कोई कारण नहीं कि आपकी ऐसी दशा न हो और भारतवर्ष में सुख शान्ति न आसके। यदि ऐसा नहीं होता है तो मैं कहे जा रहा हूं कि यह रेडियेशन का

सिद्धान्त भी एक प्रकार का भ्रम ही सिद्ध होगा। फिर मेरी घोषणा यह होगी।

प्रभु की लीला बेअन्त बेअन्त, नहीं किसी ने पार पाया।
जो भी उटा कुछ बन कर, उसने जग को है भरमाया॥
प्रभु को लीला वह आपही जाने, किसी की समझ में नहीं आया
दास फ़क़ीर ने उम्र खोदी, जो समझा वह कह गाया॥
आप मालिक वह खुद आप ही जाने, मैंने भेद नहीं पाया।
ऐसा समझ कर सुन मेरे मुन्शी, मैंने उसको सीस नवाया॥
रात दिन सुबह शाम बस, यही काम मेरे भाग्य में आया।
हुजूरी चरन में सुरत, खींच कर यहाँ ले आया॥
राधास्वामी नाम मिला था दाता से, जितना हुआ उतना कमाया
संसार वालो क्षमा करना, गर मैंनें हो ग़लत बताया॥
न कुछ लेना न कुछ देना, मौज ने अपना काम कराया।
जहाँ और जीव कर्म करत हैं, फ़क़ीर जीव ने भी खेल रचाया॥

A letter from His Holiness to Revd. Krishak ji

Act as His will guides you. I have surrendered myself to Him (the Supremost Infinity) from whom everything emanates and who is the Adhar of all.

I heartily wish health, wealth, peace and harmony to the human race. Why I wish so, I do not know. His will is supreme.

Whatever I realised in my life through the mercy of His Holiness Maharishi Data Dayal Maharaj, I have disclosed to the best of my knowledge through the language I could best use.

This world and the higher worlds look to me like a dream, but so long as it is I am dragged to play the part entrusted to me by Him.

Peace be to you

O ! Revered Krishak and peace to the human race at large.

ग़ज़ल पीरेमुग़ां साहब

मख़मूर हूं तो मैं हूं, सरशार हूं तो मैं हूं ।
मैं मुख़्तसर अगर हूँ, बिसमार हूं तो मैं हूँ ।।
मुर्शिद की बन्दगी से, रुतबा हुआ यह हासिल ।
वाक़िफ़ हूँ और महरम, इसरार हूँ तो मैं हूँ ।।
दुनियाँ के वसवसों से, अब है निजात हासिल ।
दिलदादा गर बना हूँ, दिलदार हूं ती मैं हूँ ।।
मुझसे मिलो तो हासिल, हो इल्म राज़े हक़ का ।
इस इल्म का भी असली, हक़दार हूं तो मैं हूं ।।
पीरेमुग़ाँ ने मुझको, उल्फ़त की मय पिलाई ।
इस मैकदे का सच्चा, मैख़ुआर हूँ तो मैं हूँ ।।

—०:—:०—

मेरे घमण्ड का सिर नीचा कर्म भोग अथवा मौज

(परम दयाल जी महाराज)

मेरा पुत्र पदम आज कल छुट्टी पर आया हुआ है। आज गिरधरसिंह व टेकचन्द के मनिआर्डर आये। वसूल करते हुये मैंने पदम को सम्बोधित करते हुये कहा। यह सज्जन कुछ न कुछ मासिक सहायता करते रहते हैं। और दुर्गादास ४०) मासिक भेजता है।

पुत्र मैंने जीवन में प्रण किया था कि किसी से कुछ न लूँगा। और अपने पाँव पर खड़ा रहूंगा। किन्तु आज २-२॥ वर्ष से तुम्हारी माता की लगातार बीमारी ने मेरे उस नियम को तुड़वा दिया। यह सज्जन मेरी सहायता करते हैं शेष यदि किसी ने कुछ दिया तो वह दूसरों के काम आया अथवा दाता दयाल की शिक्षा के प्रचार में अथवा किसी न किसी रूप में व्यय हुआ। उसका कोई खेद नहीं।

मैं तुम्हारी पोजीशन (स्थिति) को समझता हूँ। वास्तव में पुत्र यह समस्त खेल कर्म का है। लेने देने के सम्बन्ध में कोई पिता कोई पुत्र, कोई गुरु, कोई शिष्य आदि बनकर लेता देता है। अथवा कोई चोर या ठग बन कर भी ले जाता है।

मुझे प्रसन्नता है कि तुम अपनी शिक्षा के रुपये को अपने चचा को लौटा रहे हो, मैं तुमको शिक्षा न दे सका। तुम अपने पाँव पर खड़े हो।

किन्तु मुझे अपने नियम के तोड़ने से अत्यन्त दुख है। यद्यपि मैं जानता हूं। कौन देता है, कौन लेता है।

कौन देगा कौन लेगा, कहने सुनने की है बात।
हक़ तो यह सब आना जाना, खोना पाना दिल में है॥

अभी तक शरीर का अध्यास है और जब तक शरीर का अध्यास है मनुष्य को मर्यादा नहीं भंग करनी चाहिये। मुझसे भंग हो गई। किन्तु इतनी प्रसन्नता है कि अपनी जीविका अब तक उपार्जन कर लेता हूं। किन्तु यह अहंकार भी नहीं करना चाहता हूं। क्या पता कल को क्या हो? प्रथम अहंकार टूट गया।

चूंकि सभ्यता शिष्टाचार के नाते तुम्हारा कर्त्तव्य था और है कि तुम अपनी माता के इकलौते पुत्र होने के कारण उसका भार, सिर पर लो। कोई बात नहीं है, जहाँ तक मेरा विचार है संभवतः मैं उससे पूर्व विदा हो जाऊँ। फिर अपने उत्तरदायित्व को संभालना यह भी एक भ्रम है। मौज सबकी सहायक है।

तुम्हारी माता की अब वह भय की तथा चिन्ता जनक बीमारी नहीं रही। हृदय की दशा जिसकी कोई चिकित्सा ऐलोपैथी (वैद्यक) में नहीं है। डा० सरदारीलाल ने ऐलोपैथी और होम्यो-पैथी से की है। व्यय अवश्य अधिक हुआ। किन्तु उसके दिल का valve जो अधिक घुला हुआ था और दुख का कारण था अब नारमल दशा में लग भग आ चुका है जाबड़े की हड्डी में जो Carries है वह साधारणतः है किन्तु कम है।

यदि तुम उसको अपने पास लेजा सको तो ले जाओ। मैं अब इस गृह के कार्य से शारीरिक रूप में और मस्तिष्कीय परिवर्तन के कारण भार नहीं उठा सकता हूँ। आगे मालिक की मौज। दाता

दयाल ने कहा था। फ़क़ीर! यह तुम्हारी माता उनकी पुत्री है। और मुझे आदेश दिया था कि मैं उसकी प्रत्येक रूप से संभाल करूँगा। वह दाता ने स्वयं इन सज्जनों को प्रेरणा की। उसकी सहायता हो गई और होती है।

अपनी उदासीनता की अवस्था में इनकी सहायता करने वाले सज्जनों से कर बद्ध कहूँगा कि आपकी निष्काम सेवा जो आप मेरी करते हैं उसका बदला देने के लिये मेरे पास केवल कृतज्ञता और धन्यवाद के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यद्यपि यह भी मेरी प्रार्थना और माँग नहीं थी। किन्तु मालिक ने मुझ पर दया की। आपके हृदयों को प्रेरणा की। वह घट घट वासी है। वही आप सज्जनों को इसका बदला देगा। मेरे पास शुभ भावनायें और कामनायें हैं। वह समस्त संसार को देता रहता हूँ। इसे लिखने के पश्चात उठा और दाता दयाल की मूर्ति (स्टेचू) के सम्मुख शीश झुका दिया।

दयाल नन्द भाई जी महाराज का उपदेश

काम करना ज़िन्दगी की शान है। काम से इन्सान ख़ुद इन्सान है॥
बेफ़िक्र रहता है वह जिसको है काम। बेकार रहता है जो परेशान है
काम से राहत मिले और शान्ती। काम करने वाला ही ख़ुश नाम है॥

सेहत दौलत इज़्ज़त मिलेगी काम से।
तन में समता मन में समता तब राम है॥
बासेहत इन्सान ही है कामका।
हो सुकूं दिल में दिमाग़ तब शान है॥
काम करते तुम रहो दिन रात में।
काम में सुख शान्ती आराम है॥
सतसंगियो मेरी सुनो एक बात तुम।
राधास्वामी नाम लो सुबह ओ शाम है
राधास्वामी ने कहा दिल खोल कर।
लोक में सुख धन अलोक में धाम है॥

कर्म भोग अथवा मौज (परम दयाल जी)

"बाज आ बाज आ ऐ मेरे मन, इस लिखने लिखाने से बाज आ।"

कदाचित अपने आपको रोकता हूँ। मौन रहने का प्रयत्न करता हूँ किन्तु मेरी प्रकृति अथवा मौज ववशतः कर्म कराती है। यह क्या है? या तो कर्म भोग है या उस मालिक की इच्छा है।

कल नगर में मुनि सुशील कुमार जैन जो विश्व धर्म सम्मेलन के संस्थापक हैं उनका सतसंग था। वहाँ गया। मुनिराज ने कुछ कहने को कहा। मैंने केवल ४-५ मिनट तक अपना अनुभव वर्णन किया। वह इस प्रकार था।

"जीवन की यात्रा में यदि कोई सहायक है तो वह गुरु है। गुरु नाम है ज्ञान, विवेक, विचार, अनुभव, सच्ची समझ, प्रेम, आस और विश्वास का। यद्यपि प्राणी इस प्रकृति से बहुत कुछ ज्ञान, अनुभव आदि वह स्वयं भी प्राप्त करता है, किन्तु वह बाहर से प्राप्त किया हुआ अनुभव, ज्ञान और समझ अपूर्ण है जब तक कि कोई अन्य उसकी पुष्टि नहीं करता है, अन्य यह वाह्य पूर्ण पुरुष है और जो ज्ञान हम वाह्य प्रकृति से प्राप्त करते है वह भी अपूर्ण है क्योंकि यह वाह्य ज्ञान है। वास्तविक ज्ञान मनुष्य को उसकी अपनी आंतरिक प्रकृति से मिलता है। जब तक मनुष्य अन्तरमुखी साधन नहीं करता। पूर्ण सत गुरु अथवा पूर्ण ज्ञान जिससे मनुष्य का वास्तविक और सच्चा कल्याण हो की प्राप्ति नहीं होती है।"

प्रत्येक प्राणी की प्रकृति भिन्न भिन्न है। वह अपनी प्रकृति के अनुसार ही वाह्य और आन्तरिक प्रकृति से ज्ञान अथवा अनुभव प्राप्त करके एक प्रकार का सन्तोष प्राप्त करता है।

मुनिराज सुशीलकुमार जी ने मेरे सम्बन्ध में यह घोषणा की कि मैं अपनी सुधि-बुधि खोये रहता हूं। उनके यह शब्द हेर फेर के थे। किन्तु जो कुछ उन्होंने कहा वह सत्य है कि संसार में यह सुधि-बुधि ही है जो जीवों की आपत्ति का कारण बनती रहती

है। जो जितना भी चतुर और बुद्धिमान है उतना ही वह दुख सुख का भान अधिक करता है। जो दुख सुख हम अपनी मानसिक अवस्था से प्राप्त करते रहते हैं, वह परिवर्तन शील हैं।

मानव की बुद्धि खराद पर चढ़ी रहती है और जीव को इस संसार में भरमाती रहती है। और इसी बुद्धि का नाम माया है। गुरु की अपार दया से चूंकि मुझ पर अब यह बुद्धि अथवा माया इतना आक्रमण नहीं करती है। इसलिये मैं सुधि-बुधि खोये रहता रहता हूं और अनन्द में रहता हूं।

यह जितने महात्मा जन हैं सब के सब जब तक यह समझते हैं कि हम ही सत्य मार्ग पर हैं और अन्य त्रुटि पर हैं यह सब के सब इस माया के चक्र में हैं। मैं भी इसी चक्र में रहा हूँ, दाता दयाल महर्षि जी महाराज की पवित्र पुनीत विभूति का कृतज्ञ हूं उन्होंने इस चक्र का अनुभव करा कर इससे निकाल दिया। अब इस बुद्धि अथवा माया का रूप समझ में आ गया। अभी इस माया देश में विश्राम है। विवशतः प्रारब्ध कर्मों के अन्तरगत कर्म करना पड़ रहा है। वह कर्म है जगत कल्याण का। है तो यह भी माया का ही रूप किन्तु मैं इसमें बंधा हुआ नही हूं। यह मेरा कर्म है अथवा मौज।

मुनिराज सुशीलकुमार जी के भाषण से जो मेरा निज अनुभव था उसकी पुष्टि हो गई। उन्होंने वर्णन किया था कि वह किसी भृगुसंहिता के पण्डित के-पास गये थे। तो उसने उनके जन्म के वृतान्ता वर्णन किये। उन्होंने वर्णन किया था कि उनके नाम का प्रथम अक्षर, ग्राम के नाम का प्रथम अक्षर और जो उनके साथ महात्मा जन थे उनके भी वृतान्त बताये, इससे क्या सिद्ध होता है कि हम सब के सब भाग्य बद्ध हैं या तो हमारा यह भाग्य हमारे कर्मों के अनुसार है अथवा यह किसी अन्य शक्ति के आधीन है।

मैं इसका निर्णय अभी तक नहीं कर सका। इसलिये मैं अपने विचारों को कर्म भोग अथवा मौज के शीर्षक से व्यक्त किया करता हूं ॥

मुनिराज जी ने आत्म अनुभव का उल्लेख किया। राधास्वामी मत तथा अन्य महापुरुष भी यही कहते हैं। किन्तु यह आत्म अनुभव है क्या ? यदि हम आत्मिक अवस्था को प्राप्त कर लेना ही Self realisation (निज अनुभव) मानलें तो मुनिराज जी के अथवा मान्य महापुरुषों के विचार के अनुसार कि आत्मा ही सब कुछ है। यह अजर अमर अविनाशी है और चोला बदलता रहता है तो चूंकि प्रत्येक चोला चाहे वह इस भूमण्डल में हो अथवा किसी और लोक में वह दुख सुख से वंचित नहीं है। आस्तित्व या व्यक्तित्व कोई भी हो, स्थूल सूक्षम या, कारण वह जन्म मरण से वंचित नहीं है। देवता, गंधर्व ब्रह्मा, विष्णु, महेश जो दिव्य शक्तियाँ हैं यह भी समय के पश्चात समाप्त हो जाती हैं। सूर्य, चन्द्र और तारागण इनका भी अंत है।

इसलिये निर्वाण को प्राप्त करना आत्मिक जीवन की प्राप्ति से न होगा। आवागमन से मुक्ति न होगी। यद्यपि यह मार्ग की सीढ़ी है। उत्पति और प्रलय प्रत्येक स्थान पर है। तो फिर क्या कोई ऐसा स्थान भी है जहाँ यह उत्पति और प्रलय न हो।

मैंने समस्त आयु इस अवस्था के प्राप्त करने के लिये खोदी। साधन और अभ्यास करते करते ऐसे स्थान पर जाकर पहुँच जाता। हूँ जहाँ मैं या मेरा Self नहीं रहता है। एक सर्व व्यापकता की अवस्था आच्छादित होती है।

जहाँ पुरुष तहाँ कछु नाहीं, कहें कबीर हम चीन्हा।
जो कोई हमरी सैना बूझे, पावे पद निर्वाना ॥

इसका अनुभव शब्द और प्रकाश से परे जाने पर हुआ। यह अवस्था शरीर, मन और आत्मिक जीवन से परे की है। अन्य शब्दों में प्राणी एक चेतन का बुलबुला है जो उस मालिक, परमतत्व, अकह, अगाध, अनामी की क्षोभ गति से उत्पन्न होता है और उसी

में समा जाता है। 'जो उजे सो बिनसे'। कोई बड़ भागी इस अनाम पद तक पहुँचता है। और वही इस भव जाल को तोड़ सकता है।

मुझे तो इस ज्ञान से जो मेरे अंतर कुरेद थी समाप्त हो गई। दूसरे शब्दों में मैं ही समाप्त हो गया अभी मौज आधीन यह अस्तित्व स्थित है। यह भी उसकी इच्छा अथवा खेल है।

जैसे जैसे मौज मालिक है, वैसे वैसे हो रही है खेल।
उसकी मौज से यह खेल है, और खेल में है सबसे मेल॥
मस्त हूँ मस्ती में रहता, मस्ती से भी गया परे।
जहाँ गया वहाँ मैं नहीं, और तूभी बाक़ी न रहे॥
मिलने वालो खुश रहो, अब मैं तैयार हूं।
किस जगह को, जिस जगह से हम थे प्रकट हुए॥
क्यों हुए प्रकट, यह बताने कि यह जग खेल है।
चार दिन की ज़िन्दगी, और चार दिन का मेल है॥
ज़िन्दगी इक खेल है, लब खुले और बंद हुए।
खोज का जो अंजाम है, वह हम हैं कह चले॥
मौज ने आप ही बनाया, और आप ही सब काम किया।
भरम और अज्ञान में, हम थे पहले बह चले॥
वेदान्ती, योगी, ज्ञानी, जपी और तपी मुनी।
भ्रम की अगिनी में, सारे के सारे जल चले॥
गुरु मिले जिन ज्ञान दीन्हा, आँख अपनी खुली।
अब नहीं आवागमन, दुख सुख की चिन्ता रही॥

शेष जो कुछ उन्होंने कहा वह इस संसार में जीवन व्यतीत करने का सत्य और श्रेष्ठ उपाय है। और मानव जाति के लिये अत्यन्त लाभदायक है। मैंने भी इसी लिये जन साधारण के लिये भलाई के विचार से कर्म भोग वश 'मनुष्य बनो' की पुकार की है। किन्तु इसका कोई सम्बन्ध आवागमन से मुक्ति अथवा निर्वाण प्राप्ति से नहीं है। साथ ही मनुष्यता पूर्ण होने से पूर्व कोई व्यक्ति उस

अवस्था तक जा भी नहीं सकता है। जन साधारण के लिये यही शिक्षा हैं जो विश्वधर्म सम्मेलन वाले देते हैं।

अपने आप में अपना दर्शन

अपने आप में आप समाया, अपने घट में नित बाबा।
एक रूप है सबमें व्यापा, औघट सुघट में नित बाबा॥
जब तक है अध्यास देह का नहीं व्यौहार को तुम त्यागो।
समझलो मन से एक तत्व है, चट औचट में नित बाबा॥
मंझधार से निकली नाव तिरी, नहीं वार है अब तो पार वह।
वार पार मंझधार वही है, वही है तट में नित बाबा॥
ऐसा हो विश्वास हृदय में, फिर कुछ नहीं दुर्लभ भाई।
शान्ति में है अशान्ति में है, है खट पट में नित बाबा॥
राधास्वामी का प्रेम बसे अंतर, फिर दर्शन मिले तुझे झटपट।
मैं क्या कहूं खोल कर तुझसे, लख तिल पट में नित बाबा।

कर्मभोग अथवा मौज [ले० परम दयाल जी महाराज]

नतीजा तलाशे हक़, बता रहा हूँ संसार को।
बता कर मिटा रहा हूं, अपने कर्म के भार को॥

मुनिराज शुशील कुमार जैन होशियारपुर पधारे। उन्होंने मुझसे कहा कि मैं अपनी सुधि बुधि खोये रहता हूं। शारीरिक अवस्था में रहता हुआ तो मैं प्रत्येक रूप से चेतन्य और सावधान रहता हूं। किन्तु वास्तविक दृष्टिकोण से मैं सच मुच अपने समस्त प्रकार के शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बोध भानों को खो जाता हूँ।

मुझे बाल्य अवस्था से ही उस मालिक परमतत्व सर्वाधार जिसका विचार इस वाह्य और आन्तरिक जगत को देख कर उत्पन्न हुआ था की खोज में रहा हूं। आज यह दशा हो रही है कि मेरे अपने ही हैपने का अस्तित्व साधारणतः समाप्त होता रहता है तो फिर जब व्यक्तित्वीय चेतनता में आता हूँ तो यह अनुभव होता है कि वह मालिक, परमतत्व, सर्वाधार जिसकी मैंने खोज की, जिसके

लिए समस्त आयु जप तप किया, नाना प्रकार के भेस बदले। जिस प्रकार कि मुनिजी महाराज ने तथा अन्य साधु संतों ने और धार्मिक आचार्यों ने जिसके मिलने के लिये अनेक उपाय, साधन, अभ्यास की युक्तियाँ 'बनाईं, क्या निकला ? यही कि जैसा कि बुल्लेहशाह ने कहा है:—ओ मेरी गई गंवाई मैं मैंनूं की हुया'।

सन्त कबीर ने कहा है:—

जहाँ पुरुष तहाँ कुछ नाहीं, कहें कबीर हम चीन्हा।
जो कोई हमरी संना बूझे, पावे पद निर्वाना॥

दाता दयाल की वाणी है:—"अपने आप को और संसार को भूल जाना ही मिलाप है"।

प्रत्येक जीव जन्तु अपना पृथक-पृथक जीवन रखता है। और प्रत्येक जीवन समय आने पर अपने आपको समाप्त और मिटा जाता है। और जब तक यह नहीं मिटता है तब तक जीव अपने ही बोध-भान और अहंकार के कारण कुछ न कुछ बनकर खेल खेलने को विवश है। जब तक पूर्ण रहस्य नहीं मिलता है और वह रहस्य क्रियात्मिक रूप से प्राणी के अपने अहम् भाव को समाप्त नहीं करता प्रत्येक प्रकार के जीवन के दुख, सुख, आनन्द आदि के बोध भान जो उसमें उत्पन्न होते हैं उनका खेल समाप्त नहीं होता है।

जो व्यक्ति जिस समय जीवन के सुख और आनन्द के बोध भान में है वह अपने अज्ञान से अपने को श्रेष्ठ और दूसरों को निकृष्ट विचार करता है। किन्तु अनुभव बताता है कि समय के पश्चात् बोधभान के परिवर्तन के साथ उसका आनन्द बदल कर दुख और अशान्ति में परिवर्तित हो जाता है।

इसलिए सार-ज्ञान, सार-भेद और सार-अनुभव के समझने की आवश्यकता है जिससे कि मानव जाति का परस्पर मतभेद जो अज्ञान के कारण उत्पन्न होता है समाप्त हो। अतः अपने कर्मभोग वश भारत के कल्याण हेतु कि मानव जाति को ज्ञान प्राप्त हो, कहे जाता हूँ:—कि जब तक पूर्ण परुषों का सतसंग न मिले यह

अज्ञान दूर नहीं हो सकता है। सतसंग की बड़ी महिमा है। और वह सतसंग ऐसे पुरुषों का हो जो अपने बोध-भान को समाप्त किये हुए हों। अन्य शब्दों में जीवन मुक्ति अथवा विदेह गति पुरुष हों।

ऐसे पुरुषों की रेडियेशन संसार में शान्ती ला सकती है। क्योंकि शान्ती का संबन्ध जीवन के बोध-भान की समता के साथ संबन्ध रखता है।

यह साधन और अभ्यास बोध भान जो प्रबल होते हैं, उनको सम अवस्था में लाने की युक्तियाँ हैं, यह ध्येय और लक्ष्य नहीं हैं।

ऐ मित्रो! अपना कर्मभोग अथवा मौज थी जो इस मार्ग में आया। यात्रा की। जो परिणाम हुआ वह लेखनी बद्ध कर दिया। कोई दावा नहीं है। अपनी खोज का परिणाम बताना कोई अपराध नहीं है।

चूंकि इस अज्ञान के कारण यह अनेक धर्म, सम्प्रदाय और पंथ बने हुये हैं और इन्हीं के कारण मानव जाति परस्पर विभाजित हैं, और उसके परिणाम भारतवर्ष के लिये दुखदाई सिद्ध हुये हैं। इसलिये जगत कल्याण के विचार से कर्म मौज ने कराया है। और चाहता हूँ कि :—

भारत वासी इन्सान बनें, सच्ची बुद्धि इनको मिले।
जीवन की यात्रा खुशी से, काट कर अपनी ज़ात मिले॥
सुख रहे और शान्ती, इन्सान इन्सान के काम आवे।
भ्रम हिंडोले सब भूलत हैं, इनके सब भ्रम मिटें॥
गुरु ऋण से अब मुक्त हुये, और अपने आपमें गुम हुये।
कुछ दिन का है खेल बाक़ी, इसमें अपना कर्म कर हैं रहे॥

बेफ़ायदा है यह सारा रोना धोना।
हसरत का बीज किश्ते दिल में बोना॥
पैदाइश व मर्ग और के हाथ में है।
होने दे हो जाय जो कुछ होना॥

कर्म भोग अथवा मौज (परम दयाल जी महाराज)

प्रत्येक जीव किसी विशेष कार्य के लिये उस परम पिता ने बनाया हुआ प्रतीत होता है। मैं वास्तविकता और भगवान की खोज के लिये बनाया हुआ ज्ञात होता हूँ। बाल्यावस्था से ही मेरी रुचि इस ओर रही। और अब भी है।

सुबह शाम रात दिन, उस प्रीतम से प्यार है।
क्या है वह प्रीतम ? उसके बतलाने से लाचार है॥
खोजत खोजत खो गया, नहीं पार उसका पाया।
जितना मैं पा सका मित्रो, उतना ही मैंने बतलाया॥

कल संध्या समय एक एम. ए. का विद्यार्थी निवास स्थान पर आगया। मैं कभी किसी को घर आने की आज्ञा नहीं देता। किन्तु पता नहीं मैंने क्यों उसको आज्ञा देदी और वार्तालाप करते रहे। या तो इसे मौज कह सकते हैं अथवा उसके प्रेम की शक्ति।

वह कहने लगा कि महाराज जी मैंने अछूत जाति में जन्म लिया है। माता पिता अत्यन्त निर्धन है। सन् १९५७ में आपके पास आया था और आपसे इस परमार्थ तथा नाम आदि के विषय में प्रार्थना की थी तो आपने आज्ञा दी थी कि बच्चा शिक्षा प्राप्त करके जीविका उपार्जन करते हुये निर्धनता को दूर करो। बड़े बनो फिर समय आयेगा तब इस ओर आना। मैं उस समय से ही सदैव आपके सतसंग में आता रहता हूँ। और जो कुछ सुनता हुँ उसको नोट कर लेता हूँ और एकान्त में उसका अवलोकन करता हूं। इसमे मुझे सुख, चैन, आनन्द और शान्ति मिलती है। अब मैं शिक्षा से निवृत हो गया हूँ।

आज मैं एक दो प्रश्न लेकर आया हूँ। मैंने कहा कहो क्या प्रश्न हैं ?

प्रश्न १—आप कहते हैं कि आपके पास हित और मति के अतिरिक्त और कुछ नहीं।

किन्तु मेरे साथ दो घटनायें ऐसी हुई हैं जो यह सिद्ध करती हैं कि आप समस्त शक्तियों के मालिक हैं।

एक वर्ष हुआ मैं अपने किसी आवश्यक घरेलू कार्य के कारण आपका एक सतसंग न सुन सका। मुझे बड़ा खेद हुआ। क्या देखता हूँ कि रात्रि को स्वप्नावस्था में आपने मुझे सतसंग कराया और वह वही प्रसंग था जो आपने अपने सतसंग में वर्णन किया था। जिसकी कि पुष्टि दूसरों ने कर दी थी। यह क्या रहस्य है ?

प्रश्न २—दो वर्ष की घटना है कि मेरा एक भतीजा अत्यन्त बीमार हुआ। वैद्य, डाक्टरों ने उत्तर दे दिया। बालक सुन्दर था। मैं भी अत्यन्त दुखी हुआ। मैंने भतीजे को गोद में लेकर उसका मुख होशियारपुर की ओर करके आपको स्मरण किया और प्रार्थना की कि बाबाजी इस बालक को स्वास्थ्य और जीवन प्रदान दो। और मैं रो पड़ा। दो घण्टे के पश्चात वह बालक चैतन्य अवस्था में आगया और दूध पीने लगा और स्वस्थ्य होगया। यदि आपके पास कुछ नहीं है तो यह कैसे हुआ ?

प्रश्न ३—मेरा क्यों इस नीच जाति में जन्म हुआ ? क्या यह मेरे कर्म थे अथवा कोई और अन्य कारण था ? और मेरा जन्म कैसे सफल होगा।

ऐ संसार वालो। विश्वाश करो अथवा न करो। मैं शपथ पूर्वक वर्णन करता हूँ कि मैं इन उपरोक्त दोनों प्रश्नों से जिसका कि उल्लेख इस ऐम-ए विद्यार्थी ने किया है नितान्त अनभिज्ञ हूं। न मैंने उसको स्वप्न में सतसंग कराया न उसके भतीजे की आरोग्य किया और न उसकी प्रार्थना ही का पता है।

मेरे इस स्पष्ट वर्णन से यह व्यास वाले तथा अन्य गद्दियों वाले मुझसे अप्रसन्न रहते हैं और उन्होंने मेरी पत्रिका और पुस्तकों का बाईकाट किया हुआ है। किन्तु मैं विवश हूं कि स्पष्ट वर्णन करूँ। यदि हेर-फेर करता हूँ तो मुझे भी नीच योनि में आना पड़ेगा।

मैंने इस नवयुवक को बतलाया कि नीच योनी क्या है ? अज्ञान और भ्रम से जो जीवन व्यतीत करता है और दूसरों के आश्रित रहता है वही नीच योनि में है। जो अन्य का सहारा लेता है वह नीच है। अन्य शब्दों में विवेक-विचार और सत्य समझ का न होना ही नीचता है। नीच के अर्थ नीचे रहने वाले के हैं।

निर्धनता, आश्रय और निकृष्ट विचार ही नीचपना है। प्रत्येक व्यक्ति जो उत्पन्न होता है वह नीच ही होता है। बालक को कोई समझ-बूझ नहीं होती है। गुरु की संगति से प्राणी की नीचता जाती है। इस नीचता को दूर करना सुगम नहीं है। स्थितियाँ परिस्थितियाँ प्राणी को ऊपर नहीं उठने देती हैं। स्वार्थ, अहंकार लोभ, मोह आदि रुकावट और बाधायें डालते हैं।

मैं स्वयं नीच था। दाता दयाल ने दया करके मुझे उच्च कुल का बना दिया। और इसके लिये मेरे जीवन को अनुभव करा दिया। अब यदि मैं इन उपरोक्त घटनाओं को जो तुमने वर्णन की हैं उनको अपनी मान प्रतिष्ठा हेतु कहदूं कि मैंने तुम्हारे भतीजे को आरोग्य किया है और मैंने तुम्हें स्वप्न में सतसंग कराया है तो मैं भी नीच हूं।

हे नवयुवक ! यह तुम्हारी अपनी ही भावना, इच्छा और वासना का फल था। क्योंकि तू स्वयं पूर्ण है। तू उस मालिक परम तत्व का अंश है।

अपनी पूर्णता को प्राप्त करने के लिये अपना इष्ट पूर्ण बनाना और मानना अनिवार्य है। जिस प्रकार विद्या और ज्ञान तो तुम्हारे भीतर ही था। किन्तु तुमने पुस्तकों, अध्यापकों और विद्यालयों का सहारा लेकर एम. ए. तक आये हो, इसी प्रकार प्रत्येक प्राणी पूर्ण है। वह सतसंग (विद्यालय) नाम (अध्यापक के व्याख्यान) के सहारे पूर्णता को प्राप्त होकर, सुखी, अचिन्त और निर्भय हो जाताहै।

अब तुम्हारा विचार यदि संसार की जाति पाँति की ओर हो तो सुनो। ऋषियों ने समाज के सिद्धान्त को स्थित रखने के लिये

कार्य व्ययसाय के दृष्टिकोण से ब्राह्मण, वैष्य, क्षत्री, शूद्र आदि में मानव जाति को विभाजित किया था। यदि ऐसा न होगा तो हमारा सामाजिक जीवन नष्ट हो जायगा।

सफ़ाई का काम यदि न हो तो जीवन दुस्तर है। राजा सिंहासन के बिना तो संभवतः कुछ दिवस जीवित रह सके परन्तु सफ़ाई के बिना एक दिन भी जीवन कठिन है। सूर्य, नदी, वायु, वर्षा आदि क्या सफ़ाई का काम नहीं करते हैं? तो यह अछूत जाति भंगी, चमार, धोबी, नाई, कुम्हार आदि पने का कार्य एक महान उत्तम है। और यह अछूत जाति मानव जाति की वास्तविक और सच्ची सहायक है। माता शिशु का मल मूत्र साफ़ करती है, उसके वस्त्र धोती है, तो क्या उसका आदर मान कम हो जाता है। यह अज्ञान और मूर्खता है कि हम इन्हें अछूत समझते हैं। यह माता के समान हैं।

ऋषियों ने बड़ी बुद्धिमानी से जाति पाँति की नीव डाली थी। परन्तु अज्ञान और भ्रम अर्थात मानव के नीचपने ने यह दुर्दशा कर दी है। अब प्राकृतिक रूप में इसके सुधार की आवश्यकता प्रतीत हुई। किन्तु वर्तमान सामाजिक परिवर्तन शेली को अधिक समय पश्चात् अत्यन्त हानि पहुँचायेगी।

हे नवयुवक! मुझे ज्ञात नहीं था कि तू ५ पाँच वर्ष से मेरे सतसंग में आता रहता है। न मैंने यह कभी विचार किया कि कौन आया और कौन गया? मैं तो अपने कर्म भोग वश अथवा मौज आधीन कार्य करता हूं। मुझे प्रसन्नता है। कि तुमने एम-ए की परीक्षा दी है। अवश्य उत्तीर्ण हो जाओगे और जीवन अचिन्त, प्रसन्नता पूर्वक समृद्धशाली से व्यतीत होगा।

रही तुम्हारी इच्छा परमार्थ की। उसे भी सुनलो मित्र।

(१) उम्र गुज़रने के बाद, कह रहा हूं राज़े हक़ीक़त।
परमारथ है ज़िन्दगी का, गुज़ारना बिना कुलफ़त॥

(२) ग़म चिन्ता फ़िक्र वहम का, न रहना ही परमारथ है।
मोहताजगी, फ़िक्र चिन्ता ही, दरअस्ल स्वारथ है॥
(३) इसके अलावा परमारथ है, आवागमन से रिहाई।
मगर उसकी तुमको अभी तक नहीं ज़रूरत है॥

जीवन स्वयं पूर्ण है। उस पूर्णता को प्राप्त करने के लिये किसी पूर्ण पुरुष का सतसंग, उसका ध्यान, उसका प्रेम अनिवार्य है। या तो कोई ऐसा मिल जाय अथवा ऐसा किसी को मान लिया जाय।

आन्तरिक साधन की ओर रुचि होने का अभी समय नहीं आया॥ तुम्हारी जीविका उपार्जन और विवाह के पश्चात् यदि मैं जीवित रहा तो फिर बताऊँगा। वरन कोई अन्य बता देगा। करना तुमको स्वयं है। किन्तु प्रत्येक कार्य का समय होता है।

❀ सवाल ❀

क्यों आये थे, क्या ग़र्ज़ थी आने की यहाँ।
क्या सूद मिला आने में, और न आने में ज़ियाँ॥
देता नहीं इस सवाल का, कोई जवाब।
हैरान परेशान है, बेतरह जहाँ॥
मुर्शिद मिले, उनसे मैंने पूछा, बोले।
हस्ती है अगर, हस्ती की सूरत है अयाँ॥
इज़्हार नहीं करे, वह हस्ती कैसी।
हस्ती वह नहीं, हस्ती जो रहती हो निहाँ॥
क्या सूदो ज़ियाँ का, इसमें हो कोई सवाल।
इस बहस का इम्कान, यहाँ पर है कहाँ॥
तुम हस्त हो, हस्ती का दिखाओ जलवा।
वह काम करो, हो बशरियत जिससे अयाँ॥
तहज़ीब, इख़लाक़, महरो उलफ़त शफ़क़त।
है उन्स अगर तुममें, तो तुम हो इन्साँ॥
हैवाँ की तरह जिये, तो यह जीना कैसा।
अपने लिये जो जिये, है बदतर अज़ हैवाँ॥

हमारे यहां की पुस्तकें

१–मनुष्य बनो हिंदी ॥=)
२–जागृत जोवन ,, ।॥)
३–मानवधर्म प्रकाश उर्दू १॥) हिंदी ।॥)
४–सन्तमत सार हिंदी १)
५–फ़क़ीर शब्दावली ,, ॥=)
६–आत्मिक आदर्श ,, ।॥)
७–राधास्वामी मत ,, ।=)
८–आकाशीय रचना उ. ॥), हिंदी ॥)
९–सार भेद ,, ॥) ,, ॥=)
१०–शब्द सार ,, ।॥)
११–मनोकामना देवी ।=)
१२–नय्यरे अनवर उर्दू ।॥)
१३–आवागमन ,, ।॥) हिंदी १)
१४–सदाये फ़क़ीर ,, ।=)
१५–हयाते नौ ,, ।)
१६–सच्चाई ,, ॥)
१७–विष्णु संहिता हिन्दी १॥)
१८–शिव संहिता ,, १॥)
१९–बेफिक्री उर्दू ।॥)
२०–दयाल संहिता ,, ।॥)
२१–सुमेरु पर्वत हिन्दी १॥)
२२–दातादयाल शब्द संग्रह हिंदी॥=)
२३–योगी हिन्दी ।)
२४–शकुन विद्या हिन्दी ॥)
२५–दस अवतार तिरंगा ॥)
२६–परमार्थ सुधार हिन्दी ।॥)
२७–गृहस्थी गुरु उर्दू ।॥)
२८–भाग्य को बढ़ाओ हिन्दी ।)
२९–निष्कलंक अवतार हिंदी उर्दू ॥)
३०–विश्वहितैषी उ. १॥) विश्वप्रेमी ॥)
३१–तरक्क़ी का राज उर्दू ।=)
३२–जगत कल्याण, जगत निस्तार
३३–जगत उद्धार उर्दू २) १॥) ११)

३४–यथार्थ शांति संदेश उर्दू ॥) हिन्दी ।)
३५–क़ानूने ख़याल हिन्दी १)
36--Message of Peace 0-10-0
37--Truth & Reality 0- 6-0
38--Independence Day Leaflets 0- 2-0
39--Real Independence 0- 5-0
40--Letters of Data Dayal 0-12-0
41--Light on Anandyog 0- 3-0

प्रकाशक व मैनेजिंग एडीटर
मुन्शीलाल गोविल (विश्वप्रेमी)
"मनुष्य बनो कार्यालय"
दयाल कम्पाउण्ड, पेच जामा जी
यू० एम० जैन रोड, अलीगढ़।

Regd. No. A 808

कृपया न मिलने पर निम्न पते पर लौटा दें :—

प्रा० संख्या

"मनुष्य बनो कार्यालय"
दयाल कम्पाउण्ड, पेच जामाजी अलीगढ़ (उ० प्र०)

श्रीमान्..
....